♦ सप्तम् अध्याय ♦

उपसंहार

♦ सप्तम् अध्याय ♦

उपसंहार

विश्व विश्रुत वैदिक वाङ्मय को विश्व की प्राचीनतम संस्कृति, भारत की महान धार्मिक सभ्यता के प्रथम साहित्यिक प्रमाण के रूप में जाना जाता है। भारतीय दर्शन के अनुसार हमें जो मनुष्य योनि प्राप्त हुई है वह अत्यधिक पुण्यफलदायी है। मनुष्य को मनुष्यवत् ही स्वयं का, अपने परिवार का, राष्ट्र का सम्पूर्ण विश्व का, पर्यावरण का, तथा परिवेश का सम्मान करते हुए सदाचारयुक्त व्यवहार के साथ शास्त्रोक्त विधि से रक्षण करना चाहिये।

मनुष्य यदि काम, क्रोध, लोभ, मोह, स्वार्थवश स्वेच्छा से अनैतिक कार्य करता है, अर्थात् किसी को भी हानि पहुँचे ऐसा कार्य करता है तो वह कभी भी सद्गति अथवा मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है। पतनोन्मुखी मनुष्य अथवा विश्व संस्कृति के परोक्ष में कहीं न कहीं वेदों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का उल्लंघन तथा भोग विलास में आसक्ति ही है। स्वार्थपरायणता के आधीन हो मनुष्य वैदिक विधानों के प्रति, ईश्वर के प्रति समर्पण भाव नहीं रखते तथा भौतिक उन्नति जो हमें मात्र इहलौकिक सुख ही दिला सकती है, हम उसी की ओर आकृष्ट हो रहे हैं।

जिस प्रकार श्री मद्भगवद् गीता में स्पष्ट किया गया है कि–

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।[300]

अर्थात् जो वेदों के आदेशों की अवहेलना करता है और मनमाने ढंग से कार्य करता है, वह न तो सिद्धि का पात्र होता है, न ही उसे आत्मिक सुख प्राप्त होता है और न मोक्ष की प्राप्ति हो पाती है। अतः मनुष्य को यह समझना होगा कि वेदों के अनुसार मनुष्य का क्या कर्त्तव्य है और क्या अकर्त्तव्य। यह जानने के लिए वेदों का तथा वेदोक्त आदेशों का अनुसरण करना होगा तथा वैदिक

---

[300] श्रीमद्भगवद् गीता अ. 16.24

वाङ्मय रूपी सागर से आध्यात्मिक क्षुधा पूर्ति हेतु तर्क रहित होकर पुण्य ज्ञान रूपी जल ग्रहण करना होगा।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि वेद ही प्रबन्ध साहित्य के आद्य ग्रन्थ है। आवश्यकता है तो मात्र श्रद्धा व समर्पण भाव से ईश्वरीय वाणी द्वारा प्रदत्त निर्देशों को आत्मसात् करने की। वह मनुष्य अथवा समाज उन्नति को प्राप्त नहीं कर सकता जो मोहग्रस्त, कपटी, स्वार्थी तथा भौतिक वासनापूर्ति में संलग्न हो वह व्यक्ति वास्तविक सुख कदापि प्राप्त नहीं कर सकता है।

समस्त भारतीय वाङ्मय वेदों से लेकर पुराणों, उपनिषदों, सूत्र साहित्य, रामायण, महाभारत, कालिदास, भवभूति बाणभट्ट, इत्यादि सर्वत्र नैतिक मूल्यों व सिद्धान्तों को ही संरक्षण दिया गया है। प्राचीन भारतीय संस्कृति इतनी अधिक समृद्ध थी कि अद्यतन सामाजिक संस्कृति का पोषण कर रही है। देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के अनुसार–

''यदि मुझसे भारत की महानतम निधि व सर्वोत्कृष्ट विरासत के विषय में पूछा जाय तो मैं निर्द्वन्द्व कह सकता हूँ कि संस्कृत भाषा और साहित्य तथा उससे सम्बन्धित सारा वाङ्मय एक भव्य धरोहर है, और जब तक भारत की आधारभूत विशिष्टता भी बनी रहेगी।''[301]

वर्तमान युग में भी हजारों वर्षों पूर्व रचे गए इस स्वर्णिम इतिहास की ज्योति यथावत् दैदिप्यमान है और उसकी सनातनता व सातत्य का मूल कारण उसकी प्रत्येक युग के लिए अपनी उपादेयता होना ही है। वर्तमान युग पूर्णतः भौतिकवादी युग कहा जा सकता है किन्तु वैदिक वाङ्मय आज भी भोग व स्वार्थ निद्रा में सुषुप्त जन मानस को जागृत करने, नियमितता, कर्त्तव्य परायणता व जीवन प्रबन्धन की शिक्षाएँ प्रदान करने के लिए वैदिक वाङ्मय में उसे प्राप्त हैं। ऋग्वेद में वर्णित उषा के मन्त्र इसका ज्वलन्त उदाहरण हैं। जहाँ उषाकाल का इतनी सजीवता के साथ मानवीकरण किया गया है। यही नहीं उसे देवी स्वरूपा बताकर उसकी स्तुति की गई है। उषा की नियमित

[301] संस्कृत राष्ट्रिय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, पृ 35

दिनचर्या, उषाकाल में प्राणियों में स्फूर्ति का संचार, यज्ञादि अनुष्ठानों का विधान व ईशोपासना इत्यादि का वर्णन किया गया है–

उषो येते प्रयामेषु, युञ्जते मनोदानाय सुरयः।
अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम्।।[302]

वयश्चिते पनित्रिणो द्विपच्चतुष्पहर्जुनि।
उषः प्रारन्द्रतूंरन दिगेऽल्तेभ्यंरपरि।।
व्युच्छन्ती हि रश्मिभिविश्वाभासि रोचनम्।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत।।[303]

सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः
रूजद्ध्लहनि ददुदुस्त्रियाणां प्रति गाव उषसंवावशन्त।।[304]

एषा स्या नव्यमा युर्दधाना गूढवीतमोज्योतिषोषा अबोधि।
अग्र एति यवतिरह्वयाणा प्राचिकितत् सूर्यं यज्ञमग्निम्।।[305]

जिह्मश्चे चरितवे मघोन्याभोगया इष्टये राय उत्वम्।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा।।[306]

षारायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमाशश्वतीनाम्।
व्युच्छन्तीजीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कञ्चन बोधयन्ती।।[307]

---

302 ऋक्. 1.48–4
303 ऋग्वेद 1.49.3–4
304 वही, 7,75.7
305 वही, 7.80.2
306 वही, 1.113.5
307 वही, 1.113.8

ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन् व्यूच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदोतेयन्ति ये अपरीषु पश्यान्।।[308]

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति।
आरैक्प पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः।।[309]

एता उत्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्ते।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरूषीर्यन्ति मातरः।।[310]

अधि पेशांसिवपते नृतूरिवापोर्णुतेवक्ष उस्रेव वर्जहम्।
ज्योतिर्विश्व वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्सूषा आवर्तमः।।[311]

अतारिष्म तमसस्पारसस्योषा उच्छती वयुना कृणोति्।
श्रियो जन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीकासौमनसायाजीगः।।[312]

अर्थात् जिस प्रकार उषा के आगमन पर विद्वान् दान की ओर प्रवृत्त होते हैं, हे शुभ्रवर्ण उषा! आपके आगमन पर सभी पशुपक्षी अर्थात् सम्पूर्ण प्राणी जगत् अपने–अपने कार्य में संलग्न हो जाता है। हे उषा! तुम अन्धकार का नाश कर अपनी किरणों से जगत् को उद्भासित करो। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जहाँ मुनष्य मात्र की आँखों पर भौतिकता, स्वार्थपरायणता, अनैतिकता, वासना, लोभ का

---

[308] वही, 1.113.11
[309] वही, 1.113.16
[310] ऋग्वेद, 1.92.1
[311] वही, 1.92–4
[312] वही, 1.92–6

अन्धकार छाया हुआ है वहाँ वैदिक कालीन प्रबन्धन सिद्धान्त ही उषा किरण के रूप में प्रकाशित हो मनुष्य के मन व मस्तिष्क पर छाये हुए घने अन्धकार को मिटा सकते है।

सत्यस्वरूपिणी महती पूजनीया उषादेवी आप सत्य, महान व यजनीय देवों के साथ अन्धकार का भेदन करती हैं। उषा ही है जो सूर्योदय के पूर्व निगूढ़ अन्धकार को दूर कर नित नवयौवन के साथ प्राणियों को जगाती है। आधुनिक युग में भी मनुष्य को जगाने व स्वप्रबन्धन करने की महती आवश्यकता है। प्रतिदिन उषा उसी मार्ग से प्रवेश करती है। यहाँ उसकी नियमितता का वर्णन है जिसे मानव विस्मृत करता जा रहा है, आज संज्ञा शून्य से हो रहे मनुष्य में चेतना का संचार वेद ही कर सकते हैं। सदियाँ बीत गई प्राचीन समय में जिन लोगों ने उषा को विश्व आलोकित करते हुए देखा वे अब नहीं है, आज हम उषा को देखते हैं, भविष्य में हमारी आने वाली पीढ़ी भी उषा के दर्शन करेगी अर्थात् समय परिवर्तन के साथ संस्कृतियाँ पीढ़ियाँ बदल जाती है लेकिन प्राकृतिक नियम सदैव वही रहते हैं। किन्तु वर्तमान मानव प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर स्वयं को ही हानि पहुँचा रहा है।

जिस प्रकार संसार में दिन रात निरन्तर एक के बाद एक क्रम से आते जाते रहते हैं, उसी प्रकार जीवन में सुख–दुःख आते जाते रहते हैं। हमें उन से विचलित हुए बिना ही जीवन में सत्कर्म करते रहना चाहिये।

मानव जीवन का उद्देश्य मानवीय हितों का पोषण करना, नैतिक मूल्यों का पालन करना ही है, वैदिक वाङ्मय में यत्रतत्र सर्वत्र यही शिक्षा प्राप्त होती है। वेदों में स्पष्ट निर्देश है मात्र अर्थार्जन ही नहीं अपितु उचित मार्ग द्वारा तथा सद्उद्देश्यों के लिए धनार्जन पुण्यफलदायी है।

जिस प्रकार कोई अनैतिक कार्य यथा शराब बनाने की फेक्ट्री का मालिक अथवा कोई कर्मचारी लम्बी अवधि तक अपने कार्य तथा कार्य स्थल से प्रसन्नता अथवा आत्म संतोष प्राप्त नहीं कर सकता। जिस उत्पाद के द्वारा व्यक्ति हजारों व्यक्तियों का ही नहीं अपितु परिवारों का जीवन

नष्ट कर रहा हो तथा अनेक बच्चों का भविष्य सर्वनाश कर रहा हो ऐसा उत्पाद अथवा उससे अर्जित धन कभी दीर्घकालिक सुख प्राप्त नहीं करा सकता। देश भर में बिक रही 'सिगरेट' जो आधुनिक युवा पीढ़ी का स्वास्थ्य ही नहीं अपितु पर्यावरण का नाश कर रही है, ऐसी परिस्थिति में उस पर अंकित (छोटे अक्षरों में) वैधानिक चेतावनी की ओर कोई ध्यान नहीं देता अपितु सिगरेट उत्पादन कम्पनियों का लक्ष्य उसे अधिक मात्रा में बेचने पर केन्द्रित होता है। किन्तु यदि शासन द्वारा ऐसे उत्पादों पर सख्ती से रोक लगा दी जाय तो यह कदम सभी के हित में होगा। आने वाला समय, युवा पीढ़ी को धुँए के अन्धकार में भटकने से रोक सकेगा। वेदों में भी ऐसे किसी भी व्यसन को अनैतिक माना गया है जो मनुष्य पर हावी हो जाए।

वैदिक प्रबन्धन के अनुसार प्रबन्धन के अनेक पक्ष होते हैं, वास्तविक प्रबन्धन तो कार्य आरम्भ होने से पूर्व उसकी योजना निर्माण से ही प्रारम्भ हो जाता है। हमें क्या करना है? क्या वह कार्य नैतिक मूल्यों का सम्मान करते हुए सम्पन्न हो सकेगा? उस कार्य के सम्पादन में किन साधनों का उपयोग होगा? उसे किस विधि द्वारा सम्पन्न किया जाना है? उस कार्य से मानवता, अथवा पर्यावरण का अहित तो न होगा? एतद् विषयक विश्लेषण पहले ही कर लेना चाहिये। हम जिस भी कार्य को लक्ष्य करते हैं,उसमें सभी का हित हो ऐसा पुण्य विचार करना चाहिये। क्योंकि मोक्ष प्राप्ति के लिए स्वार्थ का त्याग करना अत्यधिक आवश्यक है।

श्रीमद्भगवद् गीता में वर्णन किया गया है कि वेदों द्वारा वर्णित आदर्श मार्ग का अनुसरण कर अज्ञान अथवा मोह का त्याग कर ही मन सद्गति को प्राप्त कर सकता है–

यदृच्छालाभसंतुष्टी द्वन्द्व तीतो निगत्यशः।

समः सिद्धावसिद्धौच कृत्वापि न निंबध्यन।।[313]

अर्थात् जो व्यक्ति संयमित मन व बुद्धि से कार्य सम्पादन करता है, अपने भौतिक शरीररूपी आवरण को मात्र जीवन निर्वाह का हेतु जान इन्द्रीय तृप्ति की कामना से रहित हो सांसारिक कार्यों का संपादन करता है वही व्यक्ति ईश्वर से एकात्म स्थापित कर सकता है। वह व्यक्ति जो लाभार्जन के लिए कार्य नहीं करता अपितु स्वतः प्राप्त होने वाले पुण्यलाभ से संतुष्ट होता है, जो ईर्ष्या रहित हो, द्वन्द्व से परे हो तथा स्थिर चित्त होकर, सफलता व असफलता दोनों ही परिस्थितियों में समभावी रहता है वह मानवता की सेवा में सदैव रत हो ईश्वर भक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

अर्थात् सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय तथा उत्तर वैदिक साहित्य सर्वत्र श्रेष्ठ कर्मों के सम्पादन व प्रबन्धित नियमित जीवन शैली की ही शिक्षा दी गई है।

शोधकार्य सम्पन्न करने में अध्ययनरत रहते हुए मुझे इस बात की अनुभूति हुई कि हमारा वैदिक साहित्य 21वीं शताब्दी में भी प्रासंगिक है। तत् समय में इसका धार्मिक स्वरूप अधिक प्रचलित था।

तत्कालीन अरण्य संस्कृति आज के युग में प्रेरणास्पद हो रही है। यज्ञ तत्कालीन जीवन प्रबन्धन में प्रतिदिन किये जाते थे। आज हम इसी संस्कृति को समझने लगे हैं। पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने के लिए धार्मिक अनुष्ठान के रूप में स्थान स्थान पर यज्ञ किये जा रहे हैं। पर्जन्य यज्ञ पर्याप्त वृष्टि के लिए सार्थक सिद्ध हो रहे हैं।

पशुधन का वैदिक युग में अत्यधिक महत्व था। ऋषि–मुनियों के आश्रम में दान स्वरूप पशुधन दिया जाता था। कन्या के विवाह में भी ''गोदान'' का महत्त्व था। गाय का गोमूत्र, गोबर, घृत और दूध सभी पवित्र वस्तुएँ मानी जाती थी। आज भी गोबर और गोमूत्र चिकित्सा का प्रचार प्रसार कर जनता को उनका महत्त्व प्रतिपादित किया जा रहा है।

---

[313] श्रीमद्भगवद् गीता 4.4–22

भारतीय संस्कृति में सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय मानव जीवन प्रबन्धन से ओत–प्रोत हैं। ब्रह्ममुहूर्त में निद्रा से जागकर अपनी सम्पूर्ण दिनचर्या नियमित हो यही परम्परा है। सभी चराचर जगत प्रकृति से अनुशासित था। पर्यावरण को स्वच्छ रखने के लिए वृक्षों को देवता स्वरूप दिया गया था। अश्वत्थ, शमी, पीपल, आँवला आदि वृक्षों का पूजन अर्चन किया जाता था। आज भी वैज्ञानिक इन वृक्षों को सर्वाधिक प्राणवायु उत्सर्जन के केन्द्र मानते हैं। ये वृक्ष मानव के लिए कल्याणकारी है।

यज्ञ संस्था वैदिक विचारों के अन्तर्गत प्रबन्धन की महत्त्वपूर्ण शिक्षा स्थली रही है। यज्ञीय प्रबन्धन में स्थावर, जंगम सहित समस्त ब्रह्माण्ड हेतु उत्तम मार्ग के सन्दर्भ, दिशा निर्देश व व्यवहार बुद्धि के विकास का ऋषि दर्शन सुप्रकाशित है। यज्ञ संस्था का चरम लक्ष्य उसकी पूर्णाहुति अर्थात् वसोर्धारा के विनियोजित मन्त्रों का लेखन यहाँ अभीष्ट है जो वैदिक प्रबन्धन के समस्त आयामों को अनुष्ठानकर्त्ता द्वारा अभियाचित है–

वाजश्च में प्रसश्च मे प्रयतिश्म मे प्रसितिश्च
मे धीतिश्चमे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे
श्रवश्च मे श्रतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे
यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च म आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

ओजश्च मे सहश्च म आत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे परूँ्षि च मे श्रीराणि च म आयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

ज्यैष्ठयं च म आधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम।।

सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च जातं च मे जनिष्यमाणं च मे सुक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविश्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च म औद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुयवं च मेऽक्षितं च मेऽन्नं च मेऽक्षुच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

वित्तं च मे वेद्यंच च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे सुपथ्यं च म ऋद्धं च म ऋद्धिश्च मे क्लृप्तं च क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे भाषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्राश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामं च मे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

अग्निश्च म आपश्च मे वीरुधश्च मे ओषधयश्च मे कृष्टपच्याश्च
मेऽकृष्टपच्याश्च मे ग्राम्याश्च मे पशव आरण्याश्च मे वित्तं च मे वित्तिश्च मे
भूतं च मे भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।
वसुच मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च म एमश्च म इत्या च मे
गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।
अग्निश्च म इन्द्रश्च मे सोमश्च म इन्द्रश्च मे सविता च म इन्द्रश्च मे
सरस्वती च म इन्द्रश्च मे पूषा च म इन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च म इन्द्रश्च मे
यज्ञेन कल्पन्ताम्।।
मित्रश्च म इन्द्रश्च मे वरुणश्च म इन्द्रश्च मे धाता च म इन्द्रश्च मे त्वष्टा
च म इन्द्रश्च मे मरुतश्च म इन्द्रश्च मे विश्वे च मे देवा इन्द्रश्च मे यज्ञेन
कल्पन्ताम।।
पृथिवी च म इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च म इन्द्रश्च मे द्यौश्च म इन्द्रश्च मे
समाश्च म इन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च म इन्द्रश्च मे दिशश्च म इन्द्रश्च मे
यज्ञेन कल्पन्ताम्।।
अ ँशुश्च मे रश्मिश्च मेऽदाभ्यश्च मेऽधिपतिश्च म उपा ँशुश्च मेऽन्तर्यामश्च म
ऐन्द्रवायवश्च मे मैत्रावरुणश्च म आश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे
मन्थी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।
आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च म एन्द्राग्नश्च मे
महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे
सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च
मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।
स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च
मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च म आधवनीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च
मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

अग्निश्च मे धर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमेघश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मेऽङ्गुलयः शक्करयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

व्रतं च म ऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मेऽहोरात्रे ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च म एकादश च म एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च म एकविँ्शतिश्च मे एकविँ्शतिश्च मे त्रयोविँ्शतिश्च म त्रयोविँ्शतिश्च मे पञ्चविँ्शतिश्च मे सप्तविँ्शतिश्च मे सप्तविँ्शतिश्च मे नवविँ्शतिश्च मे नवविँ्शतिश्च मे एकत्रिँ्शच्च में त्रयस्त्रिँ्शच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च में विँ्शतिश्च मे विँ्शतिश्च मे चतुर्विँ्शतिश्च मे चतुर्विँ्शतिश्च मेऽष्टाविँ्शतिश्च मेऽष्टाविँ्शतिश्च मे द्वात्रिँ्शच्च मे द्वात्रिँ्शच्च मे षट्त्रिँ्शच्च मे षट्त्रिँ्शच्च मे चत्वारिँ्शच्च मे चत्वारिँ्शच्च मे चतुश्चत्वारिँशच्च मे चतुश्चत्वारिँश्च्च मेऽष्टाचत्वारिँश्च्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

त्र्यविंश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्योही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्

षष्ठवाट् च मे षष्ठौही च म उक्षा च मे वशा च म ऋषमश्च मे वेहच्च मेऽनव्डांश्च मे धेनुश्चं मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽर्हर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनँ शिनाय स्वाहा

विनशिन आन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा। इयं ते राण्मित्राय यन्तासि यमन ऊजे त्वा वृष्टयै त्वा प्रजानां त्वाधिपत्याय।।

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पनताँ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग् यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पतां स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। स्तोमंश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च। स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा।।[314]

अर्थात अर्थशास्त्र, आयुर्वेद, गणित, खगोल, विज्ञान, ज्योतिषशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीति, अध्यात्म, धर्मानुष्ठान, सामाजिक जीवन से सम्बद्ध समस्त आयामों आदि अनेक शास्त्रों के जनक वेद ही है। यह उपर्युक्त मन्त्रों से सिद्ध है। गणितीय विज्ञान में शून्य का प्रयोग भारत वर्ष ही रहा है। यह वैदिक काल से सिद्ध हो चुका है।

सम्प्रति में यह तथ्य सर्व स्वीकृत है कि वैदिक वाङ्मय हर युग में प्रासङ्गिक है। आधुनिक काल में भी वेदों की उपादेयता को वैज्ञानिकों तथा बुद्धिजीवियों द्वारा सिद्ध किया गया है।

ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

[314] शु. यजु. 18.1–29